आचार्य श्रीअभिनवगुप्तपादका संक्षिप्त परिचय

[लेखक—डा० श्रीनाथ तिक्कू शास्त्री, ए० एम० एस०, बी० एच० यू०]

[गताङ्कसे आगे]

बाल्यकाल

अभिनवगुप्तकी माता बचपनमें ही मरगई थी। उसका पालन पोषण उसके पिताने किया। पहले पहल यह पढ़नेमें अधिक मन नहीं लगाता था और इधर-उधर भटकता फिरता था। परन्तु अनन्तर पिताके अथकपरिश्रमसे विद्याध्ययनकी ओर इसकी प्रवृत्ति होने लगी। यह जिस विद्यालयमें पढ़ता था वहांके लड़कोंको खेलकूद और शास्त्रार्थ कराके कुण्ठित किया करता था। इसी लिये इसको अपने सहपाठी लोग 'बालवलभीभुजङ्गः' के नामसे पुकारते थे। कुछ विद्वानोंका मत है कि 'अभिनवगुप्त' का जन्मनाम कुछ और ही है, यह उसका नाम पीछेसे पड़ा। वह कहते हैं कि इसका पूरा नाम वास्तवमें 'अभिनवगुप्तपाद' है जिसका अर्थ 'नया सांप' है। यह नाम इसे गुरुकुलमें ही मिला था, इसीलिये इसने 'बालवलभीभुजङ्गः' इत्यादि पद्योंसे इसका सङ्केत किया है। परन्तु हमारा अनुमान यह है कि इसका वास्तविक नाम 'अभिनव' था और गुप्त इसकी जातीय उपाधि तथा 'पाद' तो आदर और पूजनीयताका सूचित करनेके लिए उनकी शिष्य व भक्तमण्डलीने जोड़ दिया था। इसका प्रमाण यह है कि आचार्यने 'अभिनवगुप्तस्तवमिममकरोत्' इत्यादि कई स्थानों पर अपनेको 'अभिनवगुप्त' नामसे प्रकट किया है। तथा कहीं कहीं पर जहां कि वह शैवानन्द या विद्वत्ताके आवेशमें आते हैं वहां वह अपनेको 'अभिनवगुप्तपाद' लिखते हैं। वास्तवमें उनका नाम अभिनवगुप्त ही है। इसी लिए वह कई अतिशय पाण्डित्यसूचक स्थानोंमें भी 'पाद' शब्दकी उपेक्षा करके कह उठते हैं कि—

'योग्योभिनवगुप्तोऽस्मि' इत्यादि। इसके अतिरिक्त काश्मीरी जनतामें भी यह 'अभिनवगुप्ताचार्य' के नामसे ही प्रसिद्ध है। 'बालवलभीभुजङ्गः' कहना तो केवल अपने बाल्यकालकी चपलताको सूचित करनेके सिवाय और कोई विशेष अर्थ नहीं रखता।

अभिनवगुप्त' जिस कोटिके विद्वान् हैं उससे स्पष्ट है कि उन्होंने बाल्यकालमें विद्या प्राप्तिके लिए अवश्य ही निरन्तर और अथक परिश्रम किया था। अन्यथा युवावस्थाके प्रारम्भसे ही वह किस प्रकार ग्रन्थ रचना करनेमें समर्थ हो सकते थे और सर्वतोमुख पाण्डित्यकी प्राप्ति भी कैसे कर पाते। उन्होंने अनेक गुरुजनोंके पास काव्य, अलङ्कार, न्याय, व्याकरण और दर्शन पढ़ लिए थे। उनको 'महाकवि क्षेमेन्द्र' के समान प्रत्येक प्रकारके विषयोंकी जिज्ञासा रहती थी और अपनी इस जिज्ञासाकी पूर्ति करने यह सदा ही उद्यत रहते थे। वे सर्वदा कहा करते थे—

तस्य मे सर्वशिष्यस्य नोपदेशदरिद्रता।

गृहस्थकाल

आचार्य अभिनवगुप्त अपने पिताके एक मात्र पुत्र थे। विद्या समाप्तिके अनन्तर इन्होंने अविवाहित रहनेका हठ किया। परन्तु इनके बूढ़े पिताने इस बातको स्वीकार न किया। पिताके आदेशके विरुद्ध कुछ करना अभिनवगुप्त जैसे महापुरुषको उचित प्रतीत नहीं होता था। अतः यह विवाह करने पर विवश होगये। विवाहके कुछ समयके पश्चात् ही इनके पिताका देहान्त हुआ। जिसका आचार्यके मनमें बड़ा दुःख हुआ। यद्यपि यह गृहस्थके जीवनमें रहने लगे तथापि इनका मन विरक्तिके रङ्गमें ही सर्वदा रंगा रहता था। जो संसारका कल्याण करने आते हैं उनके ऊपर अनेक प्रकारके विघ्न टूट पड़ते हैं। परन्तु महापुरुषोंके तेजके सम्मुख वह चिर समय पर्यन्त नहीं टिक सकते हैं। अभिनवगुप्त गृहस्थी जीवनको भी एक विघ्न समझते थे। परन्तु विवाहके

कुछ ही वर्षोंके पश्चात् इनकी पत्नीका देहावसान हुआ। "उनका यह विघ्न अधिक देर तक न रहने पाया। इस पर आचार्य प्रसन्न हुए। इसी लिये उन्होंने 'श्रीतन्त्रालोक' में अपनी उस परिस्थितिकी ओर सङ्केत करते हुए कहा है कि—

'सोऽयं बलवानन्तरायोऽपि परमशिवेनाऽपहृतः'।

कुछ लोगोंका कथन है कि अभिनवगुप्त बालब्रह्मचारी थे। परन्तु उनके वर्णनसे इस बातमें तथ्यता प्रतीत नहीं होती। इनका कोई भी पुत्र नहीं था।

जीवनवृत्त

अभिनवगुप्तका जीवन एक महापुरुषका जीवन मानना उचित है। उन्होंने संसारके रंगमंचपर अनेक प्रकारकी वेशभूषासे जो अभिनय किया है वह उनके ग्रन्थ और पाण्डित्यसे स्पष्ट है। वे अधिकतर घूमते ही रहते थे और अपनी शिष्यमण्डलीके साथ दार्शनिक तत्त्वोंका प्रचार करते थे। उनको एकान्तस्थानमें रहना पसन्द आता था। इसीलिये उन्होंने अपने ग्रामके पास एक कुटिया बनाई थी और वहींपर अपना अधिकसमय ग्रन्थोंके लिखनेमें व्यतीत करते थे। वहांपर शंकरका एक मंदिर था उसके सम्मुख ही अभिनवगुप्तने अपना निवास बनाया था। इस बातका स्वयं उन्होंने उल्लेख किया है—

'तस्मिन् नगाधिपतिमण्डितचण्डधाम्नि
शीतांशुमौलिपरिपावितभूमिभागे ॥" इत्यादि

साम्मुख्यदर्शन विशेषपवित्रितात्मा काश्मीरमें निशात बागके पास एक तीर्थस्थान है जिसको वामनगंगा कहते हैं। इसका दूसरा नाम गुप्तगंगा भी है। इस तीर्थका उल्लेख 'मंखने' भी अपने 'श्रीकृष्णचरित' के दूसरे सर्गमें किया है। कई लोगोंकी धारणा है कि अभिनवगुप्ताचार्य इस स्थानपर रहा करते थे, इसीलिए इसका गुप्तगंगा नाम पड़ा है। परन्तु इसमें कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है। आचार्याभिनवगुप्त 'अवन्तिपुर' नगरमें भी रहा करते थे। यहां उस समय 'कर्ण' नामक मंत्री रहता था। यह अभिनवगुप्त का अनन्य भक्त शिष्य था। आचार्यके तंत्रालोकसे ज्ञात होता है कि अभिनवगुप्तने एकवार एक यज्ञ अवन्तिपुरमें किया और उस यज्ञमें उन्होंने अपनी वामाङ्गिनी कर्णकी पत्नीको बनाया था। इस यज्ञका उल्लेख उन्होंने दूतीयागके नामसे किया है। आचार्यने अपने जीवनको ठीक उसी प्रकार व्यतीत किया है जिस प्रकार 'शैव' दर्शनके आचार्योंको करना चाहिए।

अभिनवगुप्तके गुरु

आचार्य अभिनवगुप्त अनेक शास्त्रोंका उद्भट विद्वान् था। उसको प्रत्येक विषयकी जिज्ञासा रहती थी। इसी जिज्ञासा तथा विद्याप्राप्तिकी उत्कट इच्छाने उसको अनेक प्रकाण्ड-पण्डितोंका शिष्य बनाया। उन्होंने साहित्यविद्या 'भट्टइन्दुराजसे' पढ़ी थी। दर्शन तथा व्याकरण उन्होंने 'भट्टतौत' नामक विद्वानसे सीखा था। शैवदर्शनका सारा रहस्य उन्होंने आचार्य उत्पलदेवसे जान लिया था। ये सब उनके अध्यापक थे, परन्तु उनके तंत्रविद्याके अनुसार प्रारम्भिक दीक्षागुरु लक्ष्मणगुप्तथे तथा अंतिम आत्मसाक्षात्कार कराकर कृतार्थ करनेवाले उनके दीक्षागुरु 'श्रीशम्भुनाथ' थे। उन्होंने अपने ग्रन्थमें लिखा है—

श्रीशम्भुनाथभास्करचरणनिपातप्रभाऽपगतसङ्कोचम्।
अभिनवगुप्तहृदम्बुजमेतद्विचिनुत महेशपूजनहेतोः॥

ये जालन्धरपीठ (कांगड़ा) के एक सिद्धपुरुष थे। अभिनवगुप्तकी आध्यात्मिक उन्नतिके कारण यही थे। इन्होंने ही उनके ज्ञानचक्षु खोलकर उस परमशिवके दिव्य आलोकका दर्शन कराया था। अभिनवगुप्त इनको साक्षात् शिवका ही अवतार मानते थे। इसी लिए उन्होंने कई स्थलोंपर 'श्रीशम्भुनाथको' शिवके नामोंसे अभेदसम्बन्धसा प्रकट किया है।

मत

अभिनवगुप्त शैवदर्शनके आचार्य हैं। उनका मत 'शैव' था। उनके पूर्वज भी शैव मतके ही अनुयायी थे। यह उनके ग्रन्थोंसे स्पष्ट ही है। शैव मतके अनुयायी होनेपर भी उनको और मतोंसे द्वेष न था। उन्होंने शैव मतकी उच्चता अत्यन्त सरल तथा सुचारुरूपसे स्थापित की है। अपने 'अनुभवनिवेदनस्तोत्र'में आचार्यने अपनी प्रक्रियाका सविस्तार उल्लेख

किया है । कभी २ तो अभिनवगुप्त शैवावेशमें आकर भैरवरूप भी धारण करते हैं और कह उठते हैं—

क: कोऽत्र भो: यं सहसा निहन्मि
क: कोऽत्र भोयं कवलीकरोमि ।
क: कोऽत्र भोयं परबोधधाम
संचर्वणोन्मत्ततनुः पिबामि ॥

वे शक्तिके अनन्य उपासक अर्थात् परम शाक्त थे। कहा जाता है कि भगवान् शंकराचार्य जब काश्मीर आये थे तो उस समयतक वह शक्तिको स्वीकार नहीं करते थे। आचार्य अभिनवगुप्तके साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ। जिसमें शंकराचार्य हार गये* और उन्हें मानना पड़ा कि शिवसे बढ़कर शक्ति ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें एकच्छत्र अधिकार रखती है। उसी समय शंकराचार्यने—

शिव: शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं ।
न चेदेवं देवो न खलु कुशल: स्पन्दितुमपि ॥

इत्यादि पद्योंसे शक्तिको स्तुति करनी प्रारम्भ की थी। आचार्य अभिनवगुप्त केवल शुष्कवाद करने वाले शैव न थे, परन्तु उन्होंने अनवरत तपश्चर्या और गम्भीर अनुभवके द्वारा अपनेको शैवी स्वरूपमें लीन किया था। उन्होंने तो संसारमें शिव और शिवमें संसार अथवा अपनेमें ही सम्पूर्ण संसार और शिवका दर्शन प्रत्यक्ष किया था। अपनी अद्वैत दशाका वह स्वयं वर्णन करते हुए कहते हैं—

"त्वमहमहमेव त्वं त्वमेवाहं न चास्म्यहम् ।
अहं त्वमित्युभौ न स्तो यत्र तस्मै नमो नम: ॥"

ग्रन्थ

अभिनवगुप्ताचार्यने जितने ग्रन्थोंकी रचनाकी है उतनी संस्कृत साहित्यमें स्यात् ही किसी अन्य पण्डितने की हो। आचार्यने साहित्य, शैवदर्शन इत्यादि बहुतसे विषयोंमें अपनी रचनाएं लिखी हैं । परन्तु उनकी अधिक रचनाएं शैवदर्शनके भण्डारको ही अक्षय कर गई हैं। यदि अभिनवगुप्त जैसे पण्डितने शैवदर्शनके विषयमें इतने ग्रन्थ न लिखे होते तो यह दर्शन न जाने किस परिस्थितिमें पड़ा हुआ होता। इन ग्रन्थोंमें से अधिकतर मुद्रित हो चुके हैं। तथापि अभी बहुतसे अमुद्रित रूपमें ही पड़े हुए हैं। उनकी कुछ प्रसिद्ध रचनाओं के नाम यहां लिखते हैं—

प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनीवृत्ति: । अभिनवभारती । ध्वन्यालोकविवृत्ति: । तन्त्रालोक (४० भाग) । परात्रिंशिका । अनुभवनिवेदन स्तोत्रम् । भैरवस्तोत्रम् । परमार्थसार: । स्पन्दकारिकाविवृत्ति: । भगवद्गीता टीका । इत्यादि ।

इन सबमें श्रीतन्त्रालोक बहुत ही बड़ा ग्रन्थ है । इसके लगभग ४० भाग हैं। जोकि 'काश्मीर-रिसर्च-विभाग' ने छपवाये हैं । अभिनवगुप्ताचार्यने भरतनाट्यशास्त्र पर 'अभिनवभारती' नामक विवृत्ति लिखी है। इसमें अभिनय एवं नाट्यकलाके सिद्धान्तों का जिस रूपसे प्रतिपादन किया है वह संस्कृत साहित्यमें एक उच्च स्थान रखते हैं। इसकी प्रशंसा यूरोप के बड़े बड़े नाट्याचार्य भी मुक्तकण्ठसे करते हैं। साहित्यशास्त्रमें भी अभिनवगुप्ताचार्यने अनेक ग्रन्थ लिखे होंगे, क्योंकि अलंकार शास्त्रके उद्भट विद्वान् मम्मट तथा जगन्नाथ पण्डित इत्यादिने तो इनके मतोंका अत्यन्त आदरकी दृष्टिसे उल्लेख किया है।

विद्वत्ता

आचार्य अभिनवगुप्तकी विद्वत्ताके विषयमें तर्क वितर्क करना मानो सूर्यको दीपक दिखाना है। वह सर्वतोमुख पण्डित हैं। उनकी भाषा ओजस्विनी और मधुर है। उनकी पद्यरचना भी मधुरता, गम्भीरता तथा सुगमता से वञ्चित नहीं। उनकी सिद्धान्त प्रतिपादनकला अत्यन्त निराली है। संसारको अनित्य और मिथ्याभासके रूपमें मानने वाले शुष्क वेदान्तियोंको वे किस प्रकार अवाक् करते हैं यह निम्नाङ्कित पद्यसे प्रतीत होगा—

संसारोऽस्ति न तत्वतस्तनुभृतां बन्धस्य वार्तैव का
बन्धो नास्ति वृथैव भेदविहिता मुक्तस्य मुक्तिक्रिया ।

* यह काश्मीरकी किम्वदन्ती अप्रामाणिक तथा असत्य है। कारण शङ्कराचार्य अभिनवगुप्तसे सैकड़ों वर्ष पहले हो चुके थे। —सम्पादक

मिथ्यामोहकृदेष रज्जुभुजगच्छायापिशाचभ्रमो
मा किंचित् त्यज वा गृहाण विरम स्वस्थो यथाऽवस्थितः॥'

आजकल 'वेदान्ती' और 'शैव' लोक अपनेको एक दूसरेके बिल्कुल ही भिन्न २ मार्गों पर चलनेवाले मानते हैं। (काश्मीरमें) वास्तवमें वेदान्त और शैवमत दूध और जलकी भांति रङ्ग भिन्न होते हुए भी समन्वय या मेल करने पर एक रूप ही प्रतीत होंगे। वेदान्ती लोग 'एकोऽहं बहुस्याम्' इत्यादि उक्तियोंको खींचातानी करके जिज्ञासु या मुमुक्षुको ऐसे मार्ग पर ले जाते हैं जहां कि वह असमंजसमें पड़कर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। परन्तु आचार्य अभिनवगुप्त इस 'अद्वैत' उपनिषद् वाक्यका रहस्य कितनी मीठी और सरल पद्धतिसे समझाते हैं? थोड़ा सुनिये—

निराशंसात् पूर्णादहमिति पुरा भासयति यत्
द्विशाखामाशास्ते तदनु च विभङ्क्तुं निजकलाम्।
स्वरूपादुन्मेषप्रसरणनिमेषस्थितिजुष—
स्तदद्वैतं वन्दे परमशिवशक्त्यात्मनिखिलम्॥"

आचार्यने इसी मूल रहस्यको लेकर प्रत्यभिज्ञा की 'विमर्शिनी' की रचना कर डाली है। हठयोगोंके फेरमें पड़े हुए साधकोंको वह कहते हैं कि—

"प्राणस्य स्वरसेन यत्प्रवहनं योगः स एवाद्भुतः।"

परन्तु जो योगमार्गके चिरन्तन उपासक हैं, किन्तु आत्मज्ञानकी विभूतिसे वञ्चित हैं उन्हें इससे कैसे सन्तोष हो सकता है। अतः वे इस बातका अनुभव करते हुए साथ ही कहते हैं कि—

"योगः स प्रथते च यत्र गलिता कृत्स्ना क्रिया कायिकी।"

शैवशास्त्रके अभ्यासी पण्डितोंको आचार्य अभिनवगुप्तके प्रकाण्ड-पाण्डित्यका भली प्रकार परिचय है। यहां पर तो यह दिग्दर्शन मात्र है। वस्तुतः उनके ग्रन्थोंको पढ़नेसे ही उनकी अनुपम एवं असाधारण विद्वत्ताका ज्ञान हो सकता है।

शिष्य

आचार्य अभिनवगुप्त लोक कल्याणके लिए उत्पन्न हुए थे अतः उनका क्षेत्र सीमित न था। जहां उन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचना करके मानव जाति को अमर विभूति प्रदान की है, वहां उन्होंने अनेक मनुष्योंको विद्याकी शिक्षा और मन्त्रोंकी दीक्षा दी। उनके ग्रन्थोंसे पता चलता है कि वह अपने समयमें प्रत्येक गृहस्थीके गुरु माने जाते थे। वह स्त्रियोंको भी उपदेश देते थे। महामन्त्री कर्णकी धर्मपत्नी उनकी प्रधान शिष्या थी। उनके शिष्योंमें 'क्षेमराज' अधिक प्रसिद्ध था, उसने आचार्यके अनेक ग्रन्थों पर टीकाएं लिखी हैं।

जिस प्रकार योगिराज गोरखनाथ अपनी शिष्य-मण्डलीको साथ लेकर घूमा करते थे, और स्थान २ पर दलित तथा दुखी लोगोंका कल्याण करते थे, ठीक उसी प्रकार आचार्य अभिनवगुप्त अपनी असंख्य शिष्य-मण्डलीको साथ लेकर काश्मीरके स्थानोंमें भ्रमण किया करते थे और दुखियोंका कल्याण, जिज्ञासुओंका संशयच्छेदन, तथा साधकोंको मार्ग-दर्शन कराते रहते थे।

अन्तिम समय

कहा जाता है कि आचार्य अभिनवगुप्तने शरीर त्याग नहीं किया था। परन्तु जब उनको आभास हुआ कि उनका कार्य अब समाप्त हुआ और जिस कार्यके लिए उन्होंने देह धारण किया था उसमें अब लेश मात्र भी अपूर्णता न रही तब वह अपनी शिष्य-मण्डलीसे बारहसौ शिष्योंको चुनकर काश्मीरकी दक्षिण-पश्चिमीय पर्वत मालाकी ओर प्रस्थान करने लगे। चलते चलते वह भूरूप (यह स्थान गुलमर्गके समीप आजकल 'भीरू' नामसे प्रसिद्ध ग्राम है) की सुन्दर गुफामें पहुंचे। यह ४०८६ कलियुगी सम्वत् पौष कृष्ण दशमी (तदनुसार सन् १०२ ई० फरवरी) का दिन था। बस इसी दिन आचार्य अभिनवगुप्त अपने शिष्योंके साथ—

"व्याप्तचराचरभावविशेषं चिन्मयमेकमनन्तमनादिम्।
भैरवनाथमनाथशरण्यं त्वन्मयचित्ततया हृदि वन्दे॥"

इत्यादि अपने 'भैरवस्तोत्र' के पद्योंको गाते हुए गुफामें प्रविष्ट होकर समाधिस्थ हो गये। उसके बाद वह अभीतक उस गुफासे बाहर नहीं निकले। लेखकने

डॉ० कान्तिचन्द्र पाण्डेय पी. एच. डी. जो कि अभिनवगुप्ताचार्यके विषयमें बहुत कुछ अनुसन्धान कर चुके हैं— के साथ इस स्थानको स्वयं देखा है और गुफामें प्रविष्ट होकर वहां कुछ शिष्योंकी प्रस्तरमय-प्रतिमाओंके दर्शन भी किए हैं। यहां पर मुसलमानों की बस्ती है। किन्तु उनको अभी भी 'अभिनवगुप्त' का नाम और उसके समाधिधारणकी कथा विस्मृत नहीं है।

इस गुफाका द्वार करीब दो गज लम्बा और एक गज चौड़ा है। अन्दर कुछ दूर जाकर इसमें सीढ़ियां बनी हैं, उन सीढ़ियोंका मार्ग अत्यन्त संकुचित है। यहां तक कि मनुष्यको उत्तान होकर नीचे सरकना पड़ता है। पश्चात् एक विशाल भवन आता है। इसमें एक 'शिवलिंग' है। इस भवनसे दक्षिणकी ओर दूसरा संकुचित मार्ग है, जिसके कुछ दूर आगे जटाजूट बांधेहुए मालाधारी ब्रह्मचारियोंकी सुन्दर और सुडौल पाषाण मूर्तियां हैं। इसके सम्मुख एक दरार जैसा द्वार है। कहा जाता है कि इसीके आगे जानेपर आचार्यकी समाधिका स्थान था। परन्तु यह द्वार प्रतिदिन संकुचित हुआ जा रहा है। हमारे साथ एक ६० वर्षका बूढ़ा मुसलमान था। उसने कहा कि मैं अपने बचपनमें इस मार्गसे दूर दूर जाया करता था। परन्तु आजकल यह इतना संकुचित हो रहा है कि एक दशवर्षका बालक भी इसके भीतर प्रवेश नहीं करसकता है। मोटे या भारी पुरुष इस गुफामें प्रवेश नहीं करसकते हैं। पर्वतकी इस भयानक कन्दरामें सुन्दर और सुघड़ बटुजनोंकी मूर्तियोंको देखकर तथा ग्रामवासी मुसल्मानोंसे अभिनवगुप्त का नाम तथा उनकी निर्वाणकथा सुनकर ऐसा जान पड़ता है कि इस दन्त-कथामें अवश्य ही एक गम्भीर और विश्वसनीय रहस्य भरा है। तथा इसकी सत्यता पर ऐतिहासिक या ग्रन्थमय प्रमाण न मिलनेपर भी मनमें कोई कुशंकाकी तरंग नहीं उठने पाती।

अस्तु, आज अभिनवगुप्त हमारे सामने नहीं, परन्तु उनकी अमर रचनायें और उनका अलौकिक ज्ञान हमारे अन्धकारमय मार्गपर प्रकाशका कार्य कर रहा है। आचार्य अभिनवगुप्तने जो रचनायें संस्कृत समाजको प्रदानकी हैं उससे प्रत्येक संस्कृत साहित्य का स्नातक सदा ऋणी रहेगा। अभिनवगुप्त जैसे विद्वानके ऊपर केवल काश्मीरियोंको ही नहीं अपितु सारी भारतीय आर्यजनताको गर्व करना चाहिए। यदि यूरोपमें अभिनवगुप्त जैसा कोई विद्वान् उत्पन्न होगया होता तो आज उसके जन्मस्थानपर अनेक स्वर्णमय स्मृतियां बनीहुई होतीं। जिस प्रकार शेक्सपियरकी जन्मभूमि 'स्टेट्सफोर्ड ऑन हैविन' सारे विश्वकी शिक्षित जनतामें प्रसिद्ध है। उसी प्रकार उसका स्थान भी प्रसिद्ध होता। आज काश्मीरमें अभिनवगुप्ताचार्यकी जन्मभूमि-वितस्तावतार, उसका प्रिय नगर 'अवन्तिपुर' और उसकी समाधिकन्दरा भूरूपको कोई बिरला ही विद्वान् जानता होगा। आलस्य और अज्ञानके घने अंधकारमें पड़े हुए काश्मीरीलोग अपने इस चमकते हुए तारेकी स्मृतिको भी अब खो रहे हैं। स्मृतिचिन्ह बनानेकी तो दूसरी बात रही आज दासताकी दृढ़ शृङ्खलामें जकड़ेहुए भारतीय लोग अपने सम्पूर्ण साहित्यके ज्ञानसे वंचित हैं। यही नहीं बल्कि बहुतसे शिक्षित लोग भी अपने साहित्यको हीन और उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं।



पार्वतीय मत्स्यवेधके खेलसे भी यही प्रतीत होता है कि अर्जुनने मत्स्यवेधकी शिक्षा यहांके लोगों को दी थी और उसकी शिक्षाको तथा लोगोंकी अभ्यास सफलताको देखनेको जनता इकट्ठी होजाती थी, वही एक प्रकारका मेला हो गया। यह मेला प्रायः देवोत्सवादि पर होता है। निदान परम प्राचीन काल से इस प्रदेशके सर्वत्र पहाड़ पर बाणवेधका मेला होता है और वह बाणवेध संभवतः मत्स्यवेधका ही अनुकरण है। उसकी यह प्रक्रिया है कि एक पार्टीके कतिपय बाणविद्याके शिक्षित पुरुष दो २ तीन २ बाण लेकर बैठते हैं और दूसरी पार्टीसे एक पुरुष दश बारह हाथकी दूरी पर आकर खड़ा होता है। उसके हाथमें एक मोरपंखका बना हुआ पंखा होता है, उसको वह अपने शिर पर रखता है और कभी-कभी इतस्ततः चलाता रहता है कि जिससे बाण चलाने वालेका लक्ष्य ठीक न हो सके। दूसरे हाथमें एक पतली सी लट्ठी रहती है; जिससे पैर हिलानेमें उस को सहारा रहता है और उस लाठीके सहारे पर ठहर कर ही अपने पैरोंको वह उठाता है और हिलाता है। पैरसे लेकर गांठी तक उसके पट्टी बंधी रहती है अथवा दोहरा मोटा पैजामा रहता है। बाणके मुंह पर लोह आदि कुछ नहीं होता है किन्तु उसके मुंह पर लकड़ीकी बनी हुई छोटी सी गांठ सी रहती है, बाण सेंठा (सरकंडा) का बना रहता है। उस बाणसे पैरका लक्ष्य करके क्रमशः दूसरी पार्टीके बैठे हुए पुरुष एक एक बाण चलाते हैं और वह पुरुष अपने पैरोंको बराबर उठाता रहता है। इधर उधर उछालता है जिससे बाण पैर में न लगे। यदि किसीने बाणको पैरमें अथवा टांगमें मार दिया तो बड़ी ही खुशी मनाता है और कभी २ वे दोनों जिसने लक्ष्य पर बाण को मारा है और जिसका पैर लक्ष्य बना था वे आपसमें हाथ मिला कर चक्कर लगाते हैं—मानो बाणवेधका पाणिग्रहण मूल्य मिला हो और हिलते हुए उसके पैर वस्तुतः मत्स्याकारसे प्रतीत होते हैं। यदि आप टांगके पैरसे गांठी तकके भागको देखें और भावना करें तो मत्स्याकार ही प्रतीत होगा। और ऊपरके मोरपंखका पंखा मानो कड़ाहा है। अथवा हिलानेका यन्त्र है। भेद इतना ही है कि मत्स्यवेधमें कड़ाहमें छायाको देख कर ऊपर यन्त्रसे हिलते हुए मत्स्यका वेध किया गया था और यहां मत्स्यसे आरोपित हिलते हुए पैरका वेध किया जाता है। जो लोग इस खेलको देखे हुए हैं वे अच्छी तरह समझ सकते हैं कि मत्स्यवेधका ही यह खेल है। संभवतः इस मत्स्यवेधको अर्जुनने ही एतद्देशीय लोगोंको सिखाया था और बादमें लोग इसका अभ्यास करते रहे, वही मत्स्यवेधका अनुकरण रूप खेल आज कल समस्त हिमालय प्रान्तमें शिमला सोलन और कालिका तक खेला जाता है। इससे यह सिद्ध है कि इसी प्रान्तमें मत्स्यदेश था जहांके लोगोंको अर्जुन ने प्रकट होनेके बाद सिखाया था। विराट नगर वराड़ाके नामसे परिवर्तित आज भी अम्बाला जिलामें है, वहां स्टेशनभी है। प्राकृतमें टकारके स्थानमें 'ड' होनेसे सुविधानुकूल विराडका वराड नामसे प्रसिद्धि हो गई।

भूल सुधार

इस अङ्कमें पृष्ठ २७ के दूसरे कालम पर पहले श्लोकका दूसरा पाद—

"शरदन्तु तदा सदस्यं जातं विपद्यते"

ऐसा अशुद्ध छप गया है; वहां—

"शरदन्तु तदा सस्यं जातं जातं विपद्यते"

ऐसा शुद्ध पाठ होना चाहिए और जहां 'स्वत्त्व' छपा है वहां 'स्वत्व' होना चाहिए। इसके अतिरिक्त कहीं कहीं छपते समय अक्षरके ऊपर नीचेकी मात्राएँ पांच दश स्थानों पर टूट गई हैं या पूरी उठ नहीं सकी हैं उन्हें पाठक सुधार कर पढ़नेकी कृपा करें।

—सम्पादक।

आचार्य श्रीअभिनवगुप्तपाद और मेरे संस्मरण

बहुत समयकी बात है, उन दिनों मैं लगभग ८-९ वर्षका था। श्रीमान् आचार्य अभिनवगुप्तका नाम उस समय भी कण्ठस्थ ही था। यह ज्ञात नहीं कि पहले-पहल इनका नाम मेरे कानोंमें कब पड़ा और वाणीसे बाहर कबसे आने लगा। घरमें वर्षाऋतुकी समाप्ति पर पुस्तकोंको धूप दिखाई जाती थी तथा झाड़ पोंछ-कर व्यवस्थित रूपसे फिर उन्हें रक्खा जाता था, इस कार्यमें मैं बचपनसे ही अभ्यस्त हो चुका था। घरमें ग्रन्थसम्पत्ति भी पर्याप्त मात्रामें थी, ब्राह्मणोंका धन भी तो यही है। बहुत सारी पुस्तकें हस्तलिखित थीं और कुछ मुद्रित भी। वारम्वार उनका प्रबन्ध करने-से पुस्तक विक्रेताओंकी भांति बीसियों ग्रन्थ और ग्रन्थकारोंके नाम कण्ठस्थ हो चुके थे—उन्हीं नामोंमें-से एक विशिष्ट नाम आचार्य अभिनवगुप्तका भी है। इनका नाम विशेषरूपसे कण्ठस्थ रहनेका कारण एक और भी है, मैं अपने पिताजीसे कई बार शारदापीठ और अभिनवगुप्तके विषयमें कुछ न कुछ कथा सुना करता था। वे कहा करते थे कि—अभिनवगुप्त एक अभूतपूर्व विद्वान् और महान् सिद्ध पुरुष थे, किन्तु मैं उस समय क्या कल्पना कर सकता था कि वे कैसे विद्वान् थे और कैसे सिद्ध पुरुष थे। हां, कोई भी पुस्तक सम्मुख आने पर अर्थज्ञान न होने पर भी उसको उसी प्रकार पारायणके रूपमें पढ़कर समाप्त करनेकी प्रवृत्ति मुझमें उसी समयसे थी। श्रीमद्भाग-वतका भी एक समग्र पारायण ९ वर्षकी अवस्थामें ही इसी प्रवृत्तिसे किया था। पिताजीके शरीर छोड़नेके बाद पुस्तकोंका उसी प्रकार प्रबन्ध करते समय आन-न्दवर्द्धनाचार्य कृत ध्वन्यालोक मेरी दृष्टिमें आया, साथ ही उसकी टीका 'लोचन' जो कि आचार्य अभिनव-गुप्तकी बनाई हुई है उसे भी देखा। उस समय मैं १४ वर्षका था। यद्यपि वह भलीभांति समझमें नहीं आती थी तथापि संस्कृत भाषाका अनुशीलन अच्छी मात्रामें होनेके कारण बहुत आनन्द आया करता था। मैंने उसे उसी प्रकार पढ़कर समाप्त कर दिया। आचार्य अभिनवगुप्तकी विद्वत्ताके सम्बन्धमें कुछ विशिष्ट कल्पना दृढ़ होने लगी और ऐसा ज्ञात होने लगा कि इस कोटिका विद्वान् वास्तवमें विरला ही कोई होगा। इसके अनन्तर मैंने मम्मटभट्टके काव्य प्रकाशका अध्ययन प्रारम्भ किया, उसमें रसनिरूपण अपनी बुद्धिके अनुसार जितना भी कुछ समझा उससे भी यही ज्ञात हुआ कि भट्ट मम्मट रसके सम्बन्धमें आचार्य अभिनवगुप्तके अनुयायी मात्र हैं। तदनन्तर उमङ्ग बढ़ती गई और अभिनवगुप्तके विषयमें आदर भी बढ़ता ही गया। प्रसङ्गवश अध्ययनके समय पण्डितराज जगन्नाथका 'रसगङ्गाधर' देखा, उसमें अभिनवगुप्तका नामोल्लेख "आचार्य अभिनवगुप्त पाद" इस प्रकार बहुत हो आदरसे पण्डितराजने किया है, अस्तु।

अभिनवगुप्तके विषयमें श्रद्धाकी मात्रा बढ़ ही रही थी, उन्हीं दिनों किसी पण्डितकी प्रेरणासे शैव-दर्शनका अध्ययन प्रारम्भ किया। जिसमें "परमार्थसार" ग्रन्थ पढ़ा, यह भी आचार्य अभिनवगुप्तका ही है। अनन्तर "महार्थमंजरी" देखी, उससे भी यही ज्ञात हुआ कि आचार्य अभिनवगुप्त एक अत्यन्त अद्भुत प्रतिभाशाली पुरुष थे। पश्चात् 'तन्त्रसार' व 'ईश्वर-प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी' देखी, उससे बहुत सन्तोष हुआ। १२ वर्षसे कुछ अधिक समय हुआ शारदादर्शन करने मैं शारदा गया था। इसके पहले अमरनाथके दर्शन कर चुका था। काश्मीरके कई देवस्थानोंके दर्शन इससे भी पहले कर चुका था। कई जगह कुछ विल-क्षण चमत्कार भी देखनेमें आये। शारदामें भी जो विलक्षण चमत्कार देखनेमें आया था उसको यहां लिखनेकी आवश्यकता नहीं। काश्मीरमें रहते समय अभिनवगुप्तके विषयमें कई विलक्षण बातें सुनी। संस्कृत-साहित्यसे परिचित जितना कालिदासका नाम जानते हैं उससे भी कहीं अधिक काश्मीरके काश्मीरी

लोगोंकी जिह्वा पर अभिनवगुप्तका नाम है। केवल पण्डित ही नहीं मुसलमान भी 'अभिनवगुप्त' नामसे अपरिचित नहीं।

आगे डा० श्रीनाथ शास्त्री तिक्कूके लेखमें जो बातें रह गई हैं जिनका लिखना अत्यन्त आवश्यक है उन्हीं बातोंमेंसे जितनी मैं जानता हूँ उनमेंसे कुछ लिख रहा हूँ। काश्मीरमें अभिनवगुप्तका नाम सबसे अधिक इस समय भी लोगोंको ज्ञात रहनेका कारण एक यह भी है कि—श्रीनगरसे सामने ही एक बड़ी भारी ऊँची पहाड़ी है जिस पर बारहों महीने बड़ा भारी बर्फ रहता है उसका नाम 'अभिनवगुप्ता' है। भीरू (भूरूप) के विषयमें डा०. श्रीनाथने अपने लेखमें लिखा ही है। भूरूपका नाम वास्तवमें बहुरूप है काश्मीरमें "बहुरूपगर्भ शिवस्तोत्रम्" नामसे एक स्तोत्र भी मिलता है, जोकि भीरूकी गुफाके भीतरवाले शिवजीके सम्बन्धमें लिखा ज्ञात होता है। यह एक सिद्धस्थल है जिसमें १२०० शिष्योंको साथ लेकर आचार्यने प्रवेश किया और पुनः बाहर न आये। गुप्त गङ्गामें जहां अभिनव गुप्त शिष्योंको उपदेश दिया करते थे वहां भी कुछ दिनों मैं रहा हूँ। एक उनका और भी विशिष्ट स्थल है—इसको कोई कोई साधक पुरुष ही जानते हैं, यह स्थल पुखरीबलसे नावमें बैठकर एक दो मील जाने पर परली ओर है। आजकल इसके थोड़े ही दूर पर कोढ़ियोंका हस्पताल बनाया गया है, अस्तु।

इनकी माताका नाम विमला और पिताका नाम नरसिंहगुप्त था। इसका सङ्केत उन्होंने इस श्लोकमें दिया है—

"विमलकलाश्रयाभिनवसृष्टिमहाजननी
भरिततनुश्च पंचमुखगुप्तरुचिर्जनकः।
तदुभययामलस्फुरितभावविसर्गमयं
हृदयमनुत्तरामृतकुलं मम संस्फुरतात्॥

गोत्र इनका अगस्त्य है। इनकी गुरुपरम्परा निम्न है— श्रीसोमानन्दनाथ जिनके 'शिवदृष्टि' आदि ग्रन्थ हैं। इनके शिष्य आचार्य उत्पल जिनके 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञा' "शिवस्तोत्रावली" आदि ग्रन्थ हैं। इनके शिष्य हैं लक्ष्मणगुप्त और लक्ष्मणगुप्तके शिष्य अभिनवगुप्त हैं। अभिनवगुप्तके शिष्य क्षेमराज थे, इसके बहुत ग्रन्थ हैं। क्षेमराजके शिष्य योगराज थे। काश्मीरमें रहते समय एक पण्डितके आग्रहसे "श्रीतन्त्रालोक" देखा था; यह बड़ा अद्भुत ग्रन्थ है, किन्तु उन दिनों यह बहुत थोड़ा मुद्रित हुआ था। मुद्रित भाग ही हमने कुछ कुछ देखा था। अभिनवगुप्तके नामके साथ "गुप्त" पद होनेके कारण काश्मीरसे बाहर रहनेवालोंको उनके ब्राह्मण होनेमें सन्देहसा होने लगता है। किन्तु काश्मीरमें गुप्तवंश ब्राह्मण ही है, आज भी गुप्तका अपभ्रंश "गोप्प" रूपमें मिलता है। इस उपनामके कई ब्राह्मणोंके घर वहां आज भी हैं। जिस प्रकार श्रीसोमानन्द 'त्रियम्बक' उपनामके थे और उनके वंशधर मुसलमान होने पर भी 'त्रियम्' नामसे प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार गोपनामके मुसलमान भी हैं और ब्राह्मण भी हैं। इस गुप्तवंशमें अत्रिगुप्त, वसुगुप्त, मनोरथगुप्त, लक्ष्मणगुप्त आदि कई बड़े २ विद्वान् सिद्ध राजकार्य धुरन्धर हुए हैं। शिवसूत्रको प्रथम २ प्रकट करनेका श्रेय वसुगुप्तको ही है। जिस प्रकार अभिनवगुप्तके नाम पर वैश्यत्वकी शङ्का होती है इसी प्रकार उनके साहित्यविद्यागुरु भट्ट इन्दुराजके नामके साथ 'प्रतिहार' शब्द जुड़ा देखकर क्षत्रियत्वकी शङ्का हो जाती है। परन्तु वे भी प्रतिहार क्षत्रिय न होकर ब्राह्मण ही थे। "प्रतिहार राजाओंके सम्बन्धसे उनको भी 'प्रतिहार' कहा करते थे। अभिनव गुप्तके वंशज अन्तर्वेदी (गङ्गा यमुनाके बीचका प्रदेश) से काश्मीरमें आकर काश्मीरी बन गये। उसी प्रकार भट्ट प्रतिहारेन्दुराज भी कोङ्कणदेशसे काश्मीरमें जाकर काश्मीरी बन गये थे। कई लोगोंसे ऐसा सुना है कि अत्रिगुप्तसे वंश परम्परामें ११वें पुरुष अभिनवगुप्त थे, अस्तु। आद्य शङ्कराचार्य जब काश्मीर यात्राको गये थे उस समय अभिनवगुप्तका जन्म भी नहीं हुआ था, किन्तु काश्मीरमें यह किम्वदन्ती इतनी प्रचलित है कि बच्चे २ भी यह कहा करते हैं कि "अभिनवगुप्त और शङ्कराचार्यका शास्त्रार्थ हुआ था उसमें शङ्कराचार्य हारकर शक्तिको मानने लग गये थे"; किन्तु यह सब अज्ञानके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

हां, इन सब बातोंसे यह सिद्ध होता है कि अभिनवगुप्त एक अपूर्व विद्वान् हुए हैं। इनका समय वास्तवमें "ईश्वरप्रत्यभिज्ञा-विवृति-विमर्शिनी" ग्रन्थमें इस प्रकार आया है, इस ग्रन्थको आचार्य अभिनव गुप्तने स्वयं रचा है उसमें—

"अन्त्ये युगांशे तिथि-शशि-जलधिस्थे मार्गशीर्षावसाने" इस प्रकार पद्यका एक चतुर्थांश है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि ४११५ कलिगताब्द (विक्रम सं० १०७१) में अभिनवगुप्त विद्यमान थे, उसके बाद काश्मीर महाराज यशस्करके मंत्री श्रीवल्लभके पौत्र कर्णके लिए "परात्रिंशिकाग्रन्थविवरण" बनाया था। महाराज यशस्करका राज्यकाल ४०४१ कलिगताब्द (वि० सं० ९९७) से ४०५० (वि० सं० १००६) तक है। यशस्करके मंत्री श्रीवल्लभका पौत्र कर्ण अभिनवगुप्तका अत्यन्त श्रद्धालु शिष्य था। इसी कर्णकी स्त्रीको साथ लेकर आचार्य अभिनवगुप्तने तान्त्रिकयज्ञ किया था, जिसका नाम 'दूतीयाग' है। कर्णकी स्त्रीका नाम भगवती था, यह बात 'परात्रिंशिकाविवरण' से प्रकट है। 'परात्रिंशिकाविवरण' ग्रन्थ लिखनेके अनन्तर "श्रीतन्त्रालोक" ग्रन्थका विरचन हुआ है। कारण 'परात्रिंशिका' के वाक्य आचार्यने उसमें उद्धृत किये हैं। इसके अनन्तर 'तन्त्रसार' ग्रन्थ रचा गया जो कि 'श्रीतन्त्रालोक' का संक्षिप्त संस्करण मात्र है। इन सब बातोंसे तो यही निश्चित होता है कि विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दीके अन्तिम चतुर्थांशमें भी आचार्य अभिनवगुप्त जीवित थे। इनके ग्रन्थोंसे एक विशेष बात झलकती है कि यह सारी विद्वत्ता तथा सिद्धाईका सम्पूर्ण श्रेय उनको आत्मसाक्षात्कार कराकर कृतार्थ करने वाले गुरु महाराज श्रीशम्भुनाथको है। श्रीशम्भुनाथको जालन्धर पीठमें आत्मसाक्षात्कारकी अपूर्वसिद्धि प्राप्त हुई थी। आचार्य अभिनव गुप्त अपने १२०० शिष्योंको साथ लेकर गुफामें प्रविष्ट होगये थे, किन्तु आज भी वे और उनके शिष्य दिव्य शरीर धारण कर शारदापीठ काश्मीरमें घूमा करते हैं और योग्य योग्य साधकोंको कृतार्थ भी करते रहते हैं, यह बात प्रत्यक्ष अनुभूत है। इससे अधिक और सब बातें डा० श्रीनाथके अगले लेखमें देखिए। मैं केवल अन्तमें इतना ही लिख कर लेख समाप्त करूंगा कि—आठ नौ वर्षकी अवस्थामें जिस अभिनवगुप्तका नाम मैं घरवालोंसे सुन कर ही उच्चारण किया करता था, किन्तु आज वह एक अनुभूत प्रत्यक्षसिद्ध पवित्र नाम मेरी जिह्वा पर हो रहा है। शिवमस्तु।

—अ० वा० आचार्य

श्रीस्वाध्यायके सम्मान्य लेखकोंसे—

विनम्र निवेदन है कि आगामी 'वसन्ताङ्क' के लिए अपने अपने लेख माघ शुक्ल १५ ता० १ फरवरी १९४२ ई० पर्यन्त कागजके एक ही ओर तट (हाशिया) छोड़कर स्याहीसे सुवाच्य स्पष्ट अक्षरोंमें लिखकर भेजनेकी कृपा करें। श्रीस्वाध्यायमें आने वाले लेखोंकी एक संक्षिप्त तालिका पृष्ठ ६ पर दी गई है—उसमेंसे किसी विषय पर विद्वान् महानुभाव "वसन्ताङ्क" के लिए लेख भेज सकते हैं।

इस बार कई लेख हमारे पास बहुत ही अस्पष्ट लिखे हुए आये थे— उन्हें संशोधन सम्पादन करनेमें बड़ा परिश्रम करना पड़ा। कुछ लेख कागजके दोनों ओर लिखे हुए थे, किसीमें मार्जन बिल्कुल नहीं छोड़ा गया था तो किसीके अक्षर एवं वाक्य-विन्यास इतने अस्पष्ट और अधूरे थे कि उनकी दूसरी प्रति करके प्रेसमें देनी पड़ी। आशा है लेखक महानुभाव इन बातोंका पूरा ध्यान रक्खेंगे। अन्यथा ऐसे अस्पष्ट लेख भविष्यमें प्रकाशित न हो सकेंगे, क्योंकि प्रत्येक लेखको दुबारा लिखना हमारे लिए बहुत कठिन है।

सब लेख ऊपर लिखी अवधिके अंदर २ निम्न पते पर पहुँच जाने चाहिएँ—

सम्पादक "श्रीस्वाध्याय" सोलन (शिमला)

आचार्य श्रीअभिनवगुप्तपादका संक्षिप्त परिचय

[ले० डा० श्रीनाथ तिक्कू शास्त्री, ए० एम० एस०, बी० एच० यू०]

'श्रीस्वाध्याय' के गताङ्कमें हमने "काश्मीरी पण्डितोंकी संस्कृत-साहित्य सेवा" के विषयमें कुछ निवेदन किया था। आज हम काश्मीरके धुरन्धर दार्शनिक पण्डित आचार्य श्रीअभिनवगुप्तके जीवन तथा उनकी कृतियोंके बारेमें कुछ विवेचन करेंगे।

वंश परिचय

नगाधिराज हिमालयकी रमणीय उपत्यकामें सुविस्तृत काश्मीर देश संसारका कान्तिमान् रत्नखण्ड है। इस पर बहुत प्राचीन युगसे ही दिग्विजयी राजाओंका समय समय पर एकच्छत्र शासन रह चुका है। यहांके प्राचीन हिन्दू राजा लोग न केवल काश्मीर या भारत ही, अपितु एशिया प्रायद्वीपके बहुतसे अन्य भागों पर भी शासन करते थे। ईसवीय ६ठी और ७वीं शताब्दीके मध्यकालमें काश्मीरमें कार्कोट वंशीय महाराजा ललितादित्यका शासन था। महाराजा ललितादित्य काश्मीरका एक महान् दिग्विजयी राजा हुआ है। इसने समस्त भारतवर्ष, मध्यएशिया, तिब्बत, तुर्किस्तान, फारिस, ईरान इत्यादि सभी देशोंको जीतकर काश्मीरके राज्यमें मिला दिया था। यह वह स्वर्ण समय था जब कि काश्मीरी लोग राजनीति, दर्शन, विज्ञान और कलाके उच्च शिखर पर पहुँचे थे। उनकी मुद्रा भारत तथा एशियाके कोने कोनेमें मुद्रित हो रही थी। उस समयके राजा लोग अर्थलोलुपताके कारण पृथ्वी मण्डलके भागोंको जीतना नहीं चाहते थे, परन्तु अपनी आदर्श-संस्कृति और धार्मिकजाग्रति को प्रसारित करनेके कारण ही वह दिग्विजय किया करते थे। इसका प्रमाण ब्रिटिश म्यूजियम, कम्बोडिया, सारनाथ तथा काश्मीरके भग्नावशेष स्मृति-चिन्होंसे मिलता है। जब महाराजा ललितादित्य एशियाके देशोंको जीतकर भारत लौटा तो उसने कन्नौजके कई विद्वानोंको अपने साथ काश्मीरमें लाया और वहां उन्हें अग्रहार देकर बसाया। इन पण्डितोंमेंसे एक बड़ा भारी विद्वान् अत्रिगुप्त था। इसको महाराजा ललितादित्यने वितस्ता (झेलम) के निकासके पास एक बड़ा अग्रहार देकर बसाया। इस बातको स्वयं अभिनवगुप्तने—

> "वैतस्तमूर्धनि निवासममुष्य चक्रे
> राजा द्विजाय परिकल्पितभूमिसंपत्"

इत्यादि पद्योंमें लिखा है। कई पुस्तकोंमें तो 'वैतस्तरोधसि' पाठ भी मिलता है; परन्तु यह अधिक प्रचलित नहीं है। वितस्ताका निर्गम स्थान वितस्तावतार (जिसको आजकल 'व्यथवुतूर' कहते हैं) के नामसे काश्मीरमें प्रसिद्ध है। यह स्थान पीरपञ्चाल पर्वतमालाके रमणीय स्थली पर स्थित है तथा यहां पर कई प्राचीन भग्नावशेष चिन्ह प्राप्त हुए हैं। इसके पास ही एक ग्राम है जिसका नाम 'गुदूरगुण्ड' है। कई अन्वेषकोंका मत है कि 'गुदूर' शब्द काश्मीरीमें 'गुप्त' शब्दका अपभ्रंश है और 'गुण्ड' स्थानको कहते हैं। इस दृष्टिसे गुप्तस्थान अर्थात् "गुप्तलोगोंका निवास स्थान" यह अर्थ हो सकता है। अस्तु जो कुछ भी हो। आचार्य अभिनवगुप्तने जब यह स्वयं ही लिखा है कि उसके पूर्वज इस ग्राममें आकर बसे थे तब इसमें 'गुप्तस्थान' का अर्थ होना कुछ अस्वाभाविक नहीं हो सकता है। अत्रिगुप्तके वंशमें नरसिंहगुप्त हुआ और उसका पुत्र 'अभिनवगुप्त' था। पाठकोंको यह ध्यान रखना चाहिये कि 'गुप्त' शब्द यद्यपि वैश्य जातिका बोधक होता है, तथापि अभिनवगुप्त ब्राह्मण वंशमें उत्पन्न हुए थे। काश्मीरमें उस समय कई ब्राह्मण अपने नामके साथ गुप्त लिखते थे जैसे 'वसुगुप्त' इत्यादि। यह 'गुप्त' उपाधि काश्मीरी ब्राह्मणोंको गुप्तवंशीय राजाओंके सम्बन्धसे प्राप्त हुई थी। जैसे आजकल भी कई हिन्दू मुसलमान राजाओंकी नौकरी करनेमें काजी, मुल्ला, खान, मुगल या मलिक कहलाते हैं।

[क्रमशः]

आभार-प्रदर्शन

आजकल आभार-प्रदर्शन भी एक देखादेखीकी रीति हो रही है। पाश्चात्त्य-सभ्यताके अनुकरणकी अहमहमिकाने भारतीयोंके हृदय भूताविष्टोंके समान जड़ कर दिये हैं। इसी कारण पाश्चात्त्योंका वाक्य वेदवाक्योंसे भी अधिक प्रमाण माननेमें आजकलके नवशिक्षितोंको गौरव जान पड़ता है। साधारणसे साधारण बातमें भी वे आभार-प्रदर्शनमें नहीं चूकते। हृदयमें हालाहल भरे रहने पर भी मुखसे अमृत उगलनेका प्रयत्न करते रहते हैं। किन्तु यह रीति मानव-समाजको वास्तविकतासे बहुत दूर फेंक देगी—इस बातको वे ध्यानमें नहीं ला रहे हैं, यह समाजका दुर्भाग्य है। संसारमें असत्यता भरी रहने पर भी उसका मूल सनातन सत्य है। अतएव सत्य का आश्रय ही स्थायी सुखकी ओर लेजासकता है। "असतो मा सद्गमय" आदि वैदिक उपदेश इन्हीं विचारोंको स्पष्ट करते हैं। सत्यावलम्बित आभार-प्रदर्शन मानसिक मलोंको धो डालता है। उपकार्य व उपकारकके बीचमें आभार-प्रदर्शन एक वह कड़ी है, जो महान्से महान् लोकोपकारक कार्यको सम्पादन करनेकी क्षमता रखती है। किन्तु दिखावटी आभार-प्रदर्शन अन्तर्विद्वेष बढ़ानेमें ही साधक होगा, कारण? वहां मन निर्मल नहीं। अस्तु।

पाठकवृन्द! हम सत्य हृदयसे कहते हैं कि हमें 'श्रीस्वाध्याय' के प्रकाशनमें जिन २ महानुभावोंने सहायता दी है उनके हम हृदयसे आभारी हैं।

सर्वप्रथम हम 'श्रीस्वाध्याय' के संरक्षक एवं सहायकोंके अत्यधिक आभारी होनेसे उनको साधुवाद देते हैं।

हां, अबकी बार बघाट राज्यकी श्री १०५ मती माजी महाराणी साहिबा (सिरमौरीजी) ने 'श्रीस्वाध्याय' का सहायकत्व स्वीकार कर महान् सुकार्य किया है, अतः उन्हें विशेष धन्यवाद हैं।

हम उन महानुभावोंके भी विशेष आभारी हैं, जिन्होंने अपने सुन्दर २ लेख भेजकर 'श्रीस्वाध्याय' को साहाय्य प्रदान किया है। उनमें [illegible] विशेष उल्लेखनीय नाम ये हैं— महामहोपाध्याय श्री पं० मथुराप्रसादजी दीक्षित साहित्याचार्य, डा० श्रीनाथ शास्त्री तिक्कू, पं० परमानन्दजी विद्यालङ्कार, वि०भू० पं० श्यामशरणजी शास्त्री, पं० आनन्दस्वरूप जी ज्यो०, पं० श्रीकण्ठदत्त नन्दकिशोर जी आयुर्वेदाचार्य, श्रीयुत पूज्यपाद सिद्धान्तपञ्चानन साहित्यभूषण पं० केदारनाथ जी रा०ज्यो०, श्री पं० मुरलीधरजी ज्यौतिषाचार्य, वि० भू० श्री पं० तारादत्त जी रा०ज्यौ०, श्री पं० चन्द्रदत्त जी शास्त्री जोशी, श्री पं० धनेशचन्द्रजी आयुर्वेदाचार्य आदि २। इनमेंसे कुछ विद्वान् महानुभावों के लेख ठीक समय पर प्राप्त न होनेसे स्थानाभावके कारण इस 'हेमन्ताङ्क' में नहीं जासके, इसके लिए हम उन विद्वान् लेखकोंसे क्षमाप्रार्थी हैं। यथासमय वे लेख भी प्रकाशित अवश्य होंगे।

"श्रीस्वाध्याय" के प्रेमी ग्राहकोंके भी हम आभारी हैं—जिन्होंने स्वयं और अपने इष्टमित्रोंसे वार्षिक-मूल्य भिजवाकर अपनी गुणग्राहकताका परिचय दिया है।

हमारे मित्र श्री पं० गोविन्द जी मिश्र और श्री पं० नन्दलालजी शास्त्री साहित्याचार्यने श्रीस्वाध्याय प्रकाशनमें जो सहायता दी — वह हम कभी नहीं भुला सकते। मिश्रजीने विद्वानोंसे लेख भिजवाने, ग्राहक बनाने आदि कई कार्योंमें सफल परिश्रम किया और शास्त्रीजीने प्रूफ संशोधनमें पर्याप्त सहायता दी। इस परिश्रमके लिए इन दोनों सज्जनोंको जितना भी धन्यवाद दिया जाय थोड़ा ही है।

अब कागजकी समस्या तो दिनोंदिन ऐसी जटिल होती जा रही है कि कुछ नहीं कहा जा सकता। जबसे जापानका नया आक्रमण हुआ तबसे तो चौगुणे दामों पर भी बाजारसे यथेच्छ कागज नहीं मिल रहा है। इस विकट परिस्थितिमें बहुत ऊंचे भावका कागज हमें प्रस्तुत अङ्कमें लेजाना पड़ा है। ऐसी आर्थिक-कठिनाई सहन करके भी "श्रीस्वाध्याय" को पर्याप्त पाठ्य-सामग्रीसे पूर्ण एवं सुन्दर बनानेका प्रयत्न किया गया है। इस प्रयत्नको सफल बनाना विज्ञ पाठकोंके हाथ है। आशा है सभी सहृदय सज्जनोंका भविष्यमें भी हमें अधिकसे अधिक सहयोग प्राप्त होता रहेगा; जिससे उनका प्रिय-पत्र "श्रीस्वाध्याय" अधिकसे अधिक जनता-जनार्दनकी सेवा कर सके।

—हरदेव शर्मा त्रिवेदी

ऋतुराजका अभिनन्दन

[ले०—श्री पं० परमानन्दजी विद्यालङ्कार]

पीत वसन्ती लिये पताका,
धर कर उजला साज ।
बाग बगीची करती स्वागत,
चहुं दिशि तव ऋतुराज ॥१॥

आओ राजन्! भले पधारो,
कोकिल करती रुचिर पुकार।
आम्र-वाटिका प्रस्तुत करती,
मधुमय कुसुमों का उपहार ॥२॥

हरित रंग की साड़ी से सज,
प्रकृति-वधू करती सत्कार ।
गेहूं सरसोंके थानोंका,
करती है पथमें विस्तार ॥३॥

अन्धकार के घूंघट में से
बाहर आकर मतवाली ।
आरति करने लिये सूर्य-मणि,
उषा सजाती है थाली ॥४॥

मधुर गन्धकी धूप जलाकर,
तुझे मनाती मलयानिल ।
तेरे स्वागतका है उत्सव,
आज मनाते सारे दिल ॥५॥

रंग-रंग के फूल चढ़ाकर,
तुझे रिझाती फुलवारी ।
स्नेहपान करने को तेरा,
अकुलाती कुदरत सारी ॥६॥

सबके इस अभिनन्दन का,
तू उत्तर कैसे देता है ।
अपनी अमित कमाई में से,
हिस्सा किसको देता है ॥७॥

यही जाननेको सबकी हैं,
आंखें तुझको रहीं निहार ।
हँसकर मुसका कर तू इनका,
स्वागत करता है स्वीकार ॥८॥

उत्तर देता है यह देखो,
परिवर्तन का युग आया ।
कल जो पत्ता हरा भरा था,
पीला होकर मुरझाया ॥९॥

तरुके सिर पर जो झूला था,
उसे पैर पर पटकाया ।
काम भली नीयतसे जबतक,
इसने करके दिखलाया ॥१०॥

नभ मण्डलसे कार्बन लेकर,
मुझको जब तक पहुंचाया ॥
तबतक मैंने खातिर करके,
अपनी गोदीमें खिलवाया ॥११॥

जीर्ण अशक्त हुआ अब जाता,
अपने घरकी राह लिये ।
भला बुरा जो किया हुआ था,
उसको अपने साथ लिये ॥१२॥

दुनिया है यह रंग बिरंगी,
कहीं खज़ाने, कहीं है नंगी ।
अपनी अपनी नेक कमाई,
जग में सबको है चंगी ॥१३॥

जिन पेड़ों ने अपनेपन का,
मोह नहीं बिसराया है ।
उनको पत्ते नये न मिलते,
यही स्वार्थ फल लाया है ॥१४॥

जिन डालोंने पत्ते त्यागे,
लोक भलाई करने को ।
आम उन्हीं डालों पर लगता,
त्याग-मूल्य उर धरनेको ॥१५॥

स्वार्थ भावसे ऊपर उठकर,
जो जगकी सेवा करता ।
उसकी झोली रही न खाली,
उसको परमेश्वर भरता ॥१६॥

श्री गणेशाम्बिकागुरूभ्यो नमः

अथ देवीमहिम्नः स्तोत्रम्

श्री गणेशाय नमः।

त्वमन्तस्त्वं पश्चात्त्वमसि परितस्त्वं च पुरत-
स्त्वमूर्ध्व त्वं चाधस्त्वमसि खलु लोकान्तरवृता।
त्वमिन्द्रस्त्वं चन्द्रस्त्वमसि निगमानामुपनिष-
त्तवाहं दासोऽस्मि त्रिपुरहररामे कुरू कृपाम्।।१।।

इयान् कालः सृष्टेः प्रभृति बहुकालेन गमितो
विना यस्त्वत्सेवां करूणरसकल्लोलिनि! शिवे!
तदेतद्दौर्भाग्यं मम भवति भाग्यं पुनरिदं
मतिः शुद्धानन्दं स्पृशति तव सिद्धेश्वरि! पदम्।।२।।

सुधाधारावृष्टेस्तव जननि दृष्टेर्विषयतां
वयं यामो दामोदरभगिनि! भाग्येन फलितम्।
इदानीं भूता मां ध्रुवमुपरिभूता परमुदा
न वाञ्छामो मोक्षं विपिनपथि कक्षं जरदिव।।३।।

जपादौ नो शक्ता हरगृहिणि! भक्ताः करूणया
भवत्या ह्रीमत्या कति कति न भावेन गमिताः।
चिदानन्दाकारं भवजलधिपारं निजपदं
न ते मातुर्गर्भे जननि! तव गर्भे यदि गताः।।४।।

चिदेवेदं सर्वं श्रुतिरपि भवत्याः स्तुतिकथा
प्रियं भात्यस्मीति त्रिविधमपि रूपं तव शिवे!
अणू दीर्घं ह्रस्वं महदपरमन्तादिरहितं
त्वमेव ब्रह्मासि त्वदपरमुदारं न गिरिजे!।।५।।

त्वयान्तर्यामिन्या भगवति! वशिन्यादिसहिते!
विधीयन्ते भावा मनसि जगतामित्युपनिषत्।
अहं कर्त्तेत्यन्तर्विशतु मम बुद्धिः कथमुमे!
स्वबुद्धिः सद्भक्तो न भवति कुबुद्धिः क्वचिदपि।।६।।

न मन्त्रं नो तन्त्रं किमपि खलु विद्मो गिरिसुते!
क्व यामः किं कुर्मस्तव चरण सेवा न रचिता।
अये! मातः प्रातःप्रभृति दिवसास्तावधि वयं
कुटुम्बार्थे व्यर्थं शिव! शिव! नयामो निजवयः।।७।।

इहामुष्मिन्कस्मिन्नपि न विषये प्रेम करवै
न मे वैरी कश्चिद्भगवति! भवानि! त्रिभुवने।
गुणानामाधारं निगमगुणसारं तव पदं
मनो वारंवारं जपति च विनादं च भजते।।८।।

महामाये! काये मम भवति यादृक् खलु मनो
मनोस्ते संख्याने न हि भवति तादृक्कथमुमे ?
त्वमेवान्तर्मातर्निगमयसि बुद्धिं त्रिजगतां
न जाने श्रीजानेरपि न विदितस्तेऽम्ब! महिमा।।९।।

अमीषां वर्णानां क्रतुकरणसम्पूर्णवयसां
निकायं काव्यानामुरसि समुदायं प्रकटितम्।
स्तनौ मेरू मत्वा स्थगितममतोरू भवभयं
दयाधारं धारं मम जननि! हारं तव भजे।।१०।।

स्तनद्वन्द्वं स्कन्दद्विपमुखमुखप्रस्तुतमुखं
कदाचिन्मे मातर्वितर नु मुखे स्तन्यकणिकाम्।
अनेनायं धन्यो जगदुपरि मान्योऽपि भविता
कुपुत्रे सत्पुत्रे नहि भवति मातुर्विषमता।।११।।

जगन्मूलं शूलं परशुरवकूलंकषमिदं
द्विधा कुर्वे सर्वेश्वरि! मम तु गर्वेण फलितम्।
पदद्वन्द्वं द्वन्द्वव्यतिकरहरं द्वन्द्वसुखदं
गुणारामे रामे कलय हृदि कामेश्वरि! सदा।।१२।।

अहोरात्रं गात्रं सममजनि पात्रं मम मुदां
धनायत्तं चित्तं क्षणमपि न निश्चिन्तमभवत्।
इदानीमानीता कथमपि भवानी हृदि मया
स्थितं मन्ये धन्ये पथि कथमधन्येऽहमुचितः ?।।१३।।

निराकारा साऽऽरादधिहृदयमाराधितवता
मया मायाऽतीता सकलकलिकायाद्यहृतये।
अहं को हंसोऽहं मतिरिति विमोहं हृतवती
कृताहंताऽनंतामुपनयति सन्तानकवनीम्।।१४।।